नागार्जुन-पाषाणी-हिंदी रचना-बी०ए०पार्ट-१,मनोज कुमार सिंह,

राजा सिंह महाविद्यालय, सिवान।

पाषाणी-नागार्जुन

आंगन से हटकर कुछ थोड़ी दूर

एक झोपड़ी थी उत्तर की ओर

वहां पहुंच कर देखा अद्भुत दृश्य--

भूलुंठित थी नारी-प्रतिमा,ओह!

ग्लानि-क्षोभ का वैसा करूण प्रतीक ।देख सामने राम रह गए दंग,

मुंह से फूटा नहीं एक भी बोल,

वही धम्म से बैठ गए तत्काल,

हुए हतप्रभ और व्यथित सौमित्र ।

निर्निमेष थे उनके दोनों नेत्र,

पाषाणी का मुख्य मंडल था केंद्र।

इस प्रकार अवलोकन में कुछ काल

बीता। तब कोशल्या नंदन और

पास आ गए किया मूर्ति को स्पर्श।

खुली पलक,टिमटिमा उठी फिर दृष्टि,

हुए दीप्त सहसा दृग-कूप,

अधरों पर था स्पंदन का आभास,

पुनः कराया कर पल्लव-संस्पर्श,

फिर चमकी आंखें, फिर फड़के ओंठ;

पाषाणी में किया प्राण संचार--

कौन देव,तुम मेरे हृदय-आधार

असुर क्रूर, तो सुर होते हैं धूर्त;

क्षणमति होते किन्नर औ गंधर्व,

दुर्विग्ध संशयी, हृदय से हीन

होता मानव, तुम हो उससे भिन्न!

धन्वंतरि का कर-पल्लव-संस्पर्श

सुनती हूं करता अमरत्व-प्रदान

घनश्याम,बतलाओ तुम हो कौन?

पाषाणी में डाल दिए हैं प्राण!

कहा राम ने होकर परम विनीत!

"कौशलेश दशरथ के हैं हम हैं पुत्र,

राम-लखन-से साधारण हैं नाम,

किया राक्षसों ने भीषण उत्पात

पूर्णाहुति तक पहुंचा ना पाए यज्ञ

उन दुष्टों का ही करने संहार

महाराज से हमको लाए मांग

गांधिपुत्र कौशिकमुनि विश्वामित्र;

उन्हीं महाकुल-पति का ले आदेश

निकले हैं अब देश-भ्रमण के हेतु

देवि! हमारा दसवां दिन है आज

इस कुटिया में ! हुई आप प्रकृतिअस्थ

अहोभाग्य ! मैं किंतु पूछ लूँ नाम,

गोत्र और कुछ---कैसा यह अभिशाप?" "गौतम-दार अहल्या मेरा नाम,

यहीं कहीं होंगे मुनि भी हे राम!

दिया उन्होंने मुझको यह अभिशाप--

पर नर-दूषित पुंश्चली, तेरी देह

हो जाए निस्पंद कुलिश-पाषाण!"

किंतु!वत्स, तेरे सिर पर रख हाथ

सत्य-सत्य कहती हूं परमोदार !

साक्षी पृथ्वी,साक्षी है आकाश,

हुई नहीं संपृक्त किसी के साथ

कभी अहल्या अपने पति को छोड़!

धरकर पति का आकृति-रूप-स्वभाव

यदि आवे कोई पत्नी के पास--

कहो तात, फिर इसमें किसका दोष?--

फिर भी किया नहीं मैंने प्रतिवाद

रोष गरल की भांति हो गया व्याप्त;

प्रबल ताप से लहू बन गया बर्फ

ऐंठी जिह्वा, वाक्य हो गए बंद--

चेष्टाएँ भी रह न सकीं अनिरुद्ध,

धराशायिनी बनी वत्स मैं, हंत

भग्नदीपिका,सूखी बाती और

चिर अवहेलितकुटिया निर्जन प्रांत--

स्नेहदान का यह अद्भुत वृतांत

सुन-सुन पुलकित होगा सारा विश्व ।

जय-जय कौशल्या नंदन राम!

पाषाणी करती है तुम्हें प्रणाम!"

लिए अहल्या ने दोनों कर जोड़

उठ न सकी इतनी दुर्बल थी,किंतु

लगा प्रवाहित होने अश्रु प्रवाह।

नहीं हुई थी अम्ब, आप पाषाण,

नहीं हुई थी अब आप निष्प्राण!

नहीं-नहीं अन्तस्सलिला मरूभूमि--

सदृश्य आप भी रहीं चेतना पूर्ण।

उसी समय हो गया मुझे विश्वास--

प्रतिमा है यह नहीं इतर-सामान्य

अब निश्चित है पति का अनुचित शाप

अम्ब,आपमें हो ना सका संक्रांत!

कैसे छुए किसी को कोई शाप

किया नहीं जब सपने में भी पाप?"

व्याख्या:-आजादी के दो महीने पहले जून, 1947 में नागार्जुन की लंबी मिथकीय रचना पाषाणी छपी थी। यह कविता युगधारा, रत्नगर्भ, भूमिजा में इसे संकलित किया गया था। हालांकि पहली बार यह रचना इलाहाबाद से निकलने वाली त्रैमासिक पत्रिका प्रतीक में 1947 में प्रकाशित हुई थी। यह लंबी कविता नागार्जुन ने बरवै छंद में रची। यह छंद, बकौल नागार्जुन कवि गुरुओं का मनचीता (प्यारा) है। इस छंद को रहीम ने भी पसंद किया है और बाबा तुलसी ने भी। तुलसीदास ने तो इस छंद में बरवै रामायण की रचना ही की है।पाषाणी, अहिल्या पर केंद्रित लंबी कविता है। करीब 220 पंक्तियां। रचना पुरुष सत्ता के क्रूर, क्षणमति, दुर्विग्ध संशय को रेखांकित करती है। जब हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श उपस्थित नहीं हुआ था, नागार्जुन स्त्री पक्षधरता पर कविता लिख रहे थे। उनके लिए अहिल्या से बड़ा चरित्र कोई दूसरा नहीं दिखाई दिया। अहिल्या छल की मारी थी। पति ऋषि गौतम ने शाप दे दिया। वह पाषाणी हो गई। अहिल्या नाम भी शायद इसलिए पड़ा कि वह हिल-डुल नहीं सकती। नागार्जुन जब अपनी कविता की शुरुआत करते हैं, इन आरंभिक पंक्तियों में पूरा वातावरण उपस्थित हो जाता है। वह बताते हैं कि बिना स्त्री के घर, परिवार ही नहीं, आश्रम भी संस्कारविहीन हो जाते हैं। यह नारी की प्रतिष्ठा है। राम जब आश्रम में पहुंचते हैं, उन्हें आश्रम शून्यप्राय दिखाई देता है। यत्र-तत्र तृण उग आए हैं। सारा प्रांगण संस्कारविहीन दिखाई पड़ता है।

राम देखते हैं:-

आंगन से हटकर कुछ थोड़ी दूर

एक झोंपड़ी थी उत्तर की ओर

वहां पहुंचकर देखा अद्भुत दृश्य:

भू-लुंठित थी नारी-प्रतिमा, ओह!

ग्लानि-क्षोभ का वैसा करुण प्रतीक

देख सामने राम रह गए दंग

वहीं धम्म से बैठ गए तत्काल...

लक्ष्मण पूछते हैं:-

साधारण-सी इस प्रतिमा में, आर्य!

क्या है जिससे हुआ आपको खेद?

राम लक्ष्मण से चुपचाप बैठने को कहते हैं और पाषाणी के मुखमंडल को निर्निमेष निहारते हैं। थोड़ी देर बार पाषाणी के पास आते हैं, मूर्ति को स्पर्श करते हैं। सिर से लेकर तलवे तक अंग-प्रत्यंग। पूरे मनोयोग से राम हाथ फेरते हैं। हाड़ों का वह शिलाभूत संसार हिलता है,डोलता है,तो दाशरथी रोमांच से भर जाते हैं। वे लक्ष्मण की ओर देखते हैं और लक्ष्मण को नि:शब्द उत्तर देते हैं। और, इस तरह राम पाषाणी में प्राण संचार करते हैं।

नागार्जुन पाषाणी के मुंह से कहलवाते हैं-

'कौन देव, तुम मेरे हृदयाधार ?

असुर क्रूर, तो सुर होते हैं धूर्त;

क्षणमति होते किन्नर औ गंधर्व,

दुर्विग्ध संशयी, हृदय से हीन

होता मानव, तुम हो उससे भिन्न!

धन्वंतरि का कर-पल्लव-संस्पर्श

सुनती हूं, करता अमरत्व प्रदान

धनश्याम, बतालाओ, तुम हो कौन?

पाषाणी में डाल दिए हैं प्राण !

राम ने विनीत होकर अपना परिचय दिया और फिर राम ने पाषाणी से परिचय पूछा तो अहिल्या ने कहा-

अहोभाग्य ! मैं किंतु, पूछ लूं नाम,

गोत्र और कुल...कैसा यह अभिशाप?

'गौतमदार अहिल्या मेरा नाम

यहीं कहीं होंगे मुनि भी हे राम!

दिया उन्होंने मुझको यह अभिशाप:

परनर दूषित, पुंश्चलि, तेरी देह,

हो जाए निस्पंद कुलिश-पाषाण।

अहिल्या अपनी पूरी कथा बताती है कि उसने अपने पति को छोड़ किसी का ध्यान नहीं धरा। वह पूछती है, यदि कोई पति का रूप धरकर आ जाए तो उसका क्या दोष?

पति के इस अन्याय से ही पाषाण हो गई। अहिल्या अपनी व्यथा सुनाते-सुनाते उसकी आंखों से अश्रु की धारा बहने लगी। राम उसके उत्तरीय से आंसू पोछते हैं। राम आश्वासन देते हैं, रोवे मत, देवि!

अब न होगा आपको कोई कष्ट!

गदगद होकर मुनिपत्नी ने कहा धन्य!

पाकर तेरे करकमलों का स्पर्श

प्राणवंत हो उठा आज का पाषाण

अहिल्या राम से कहती है, क्या भूल तो नहीं जाओगे। राम कहते हैं, क्या तुम रघुकुल की रीति नहीं जानती। राम अहिल्या के दोनों पैर छूकर प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि जीवन भर वह तुम्हे रखेगा दया, नारी के प्रति कभी न होगा क्रूर, नही करेगा वह दूसरा विवाह। अहिल्या आशीष देती है-'पाया जिसने तुम सा राजकुमार

युग-युग जियो दयालु, दीन जन बंधु, होगी तुमसे प्रजा यथार्थ सनाथ...-आशीर्वाद ले दोनों भाई जनकपुर की ओर प्रस्थान कर जाते हैं। और, कविता समाप्त हो जाती है।

यही कविता का विषय है। अहिल्या के उद्धार की। इस उद्धार में नारी की पीड़ा है। पुरुष सत्ता समाज में नारी कुचली जाती रही है। इस आधुनिक युग में भी स्त्री उपेक्षिता ही है। कविता जब रची गई थी, विमर्श के केंद्र में स्त्री नहीं थी। आजादी का आंदोलन चरम पर था। इस आंदोलन में स्त्रियां किसी से पीछे नहीं थी। नागार्जुन याद कर रहे थे। आजादी के बाद स्त्रियां अहिल्या की तरह शापित न हो। इसलिए इस प्रतीक का इस्तेमाल किया अपनी कविता में।